शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

आचार्य चतुरसेन के 'श्रीराम' में रस-निष्पत्ति

हरमनजोत कौर
पीएच.डी.शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में रस-सिद्धांत को वह केंद्रीय स्थान प्राप्त है, जिसके बिना नाट्य और काव्य की सौंदर्यात्मक व्याख्या अधूरी मानी जाती है। भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" का सूत्र न केवल नाट्य की संरचना को समझने की कुंजी प्रदान करता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि साहित्य का लक्ष्य बाह्य यथार्थ का चित्रण न होकर भावानुभूति का परिष्कृत संप्रेषण है (भरतमुनि 68)। आचार्य चतुरसेन कृत *"श्रीराम"* नाटक इसी परंपरा में एक ऐसी कृति है, जिसमें रामकथा के उत्तरकाण्डीय प्रसंगों के माध्यम से करुणा, प्रेम, धर्म और त्याग का बहुस्तरीय नाट्य-विन्यास उपस्थित होता है। यह नाटक केवल धार्मिक आख्यान का पुनर्पाठ नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं की जटिलता का कलात्मक रूपांतरण है, जिसे रस-सिद्धांत के आलोक में विश्लेषित करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

नाटक का प्रारंभ ही उस भावभूमि को निर्मित करता है जहाँ स्मृति और वर्तमान के बीच का तनाव धीरे-धीरे करुणा की दिशा में विकसित होता है। *कथासार (पृष्ठ 2–4)* में यह स्पष्ट किया गया है कि राम को लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग करना पड़ता है। यह प्रसंग नाटक के समस्त भाव-संरचना का केंद्रबिंदु है, क्योंकि यहीं से शोक, विरह और आत्मद्वंद्व की श्रृंखला आरंभ होती है। भरतमुनि के अनुसार करुण रस का स्थायीभाव 'शोक' है, और यह शोक तभी प्रभावी होता है जब उसके साथ उपयुक्त विभाव, अनुभाव और संचारी भाव जुड़े हों। इस नाटक में राम और सीता दोनों ही आलंबन विभाव के रूप में उपस्थित हैं, जबकि लोकापवाद, सामाजिक मर्यादा और वनवास उद्दीपन विभाव के रूप में कार्य करते हैं। इन विभावों के प्रभाव से उत्पन्न अनुभाव जैसे स्मृति, मौन, विषादपूर्ण संवाद, करुण रस को सघन बनाते हैं।

राम का यह कथन, "मेरा मन उन्हीं दिनों की ओर दौड़ जाता है…" (पृ. 14), इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह वाक्य केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की पीड़ा का संकेत है। यहाँ स्मृति एक अनुभाव के रूप में कार्य करती है, जो स्थायीभाव 'शोक' को उद्दीप्त करती है। अतीत के सुखद क्षण वर्तमान के दुःख को और अधिक तीव्र बना देते हैं, जिससे दर्शक के भीतर करुणा का संचार होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार रस का अनुभव तभी संभव है जब दर्शक इन भावों को अपने व्यक्तिगत अनुभव से अलग कर सार्वभौमिक रूप में ग्रहण करे (अभिनवगुप्त 112)। इस संवाद के माध्यम से दर्शक केवल राम के दुःख को नहीं देखता, बल्कि स्वयं उस दुःख का अनुभव करने लगता है। सीता का चरित्र इस करुणता को और अधिक गहन बनाता है। उनके संवादों में प्रेम और पीड़ा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उदाहरणतः—"आपका सान्निध्य ही मुझे प्रिय है…" (पृ. 13), यह कथन श्रृंगाररस की अभिव्यक्ति है, किंतु इसकी पृष्ठभूमि विरह है। यहाँ 'सान्निध्य' की कामना वास्तव में उसकी अनुपस्थिति को ही रेखांकित करती है, जिससे विप्रलंभ श्रृंगार की स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार श्रृंगार और करुण रस एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित होकर एक जटिल भावानुभव का निर्माण करते हैं। यह वही स्थिति है जिसे आधुनिक आलोचना में 'संकर रस' कहा जाता है, जहाँ दो या अधिक रस मिलकर एक नवीन अनुभूति उत्पन्न करते हैं। नाटक के एक अन्य प्रसंग में, जहाँ राम अपने निर्णय का औचित्य प्रस्तुत करते हैं, यह स्पष्ट होता है कि उनके भीतर केवल करुणा ही नहीं, बल्कि वीरता का भी भाव है। *कथासार (पृ. 3)* में उल्लिखित है कि राम ने प्रजा के हित में सीता का परित्याग किया। यह निर्णय उत्साह और धैर्य का परिचायक है, जो वीर रस के स्थायीभाव से संबंधित है। किंतु यह वीरता पारंपरिक युद्ध या पराक्रम की नहीं, बल्कि नैतिक साहस की है। यहाँ वीर और करुण रस एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक बन जाते हैं। राम का चरित्र इसी द्वंद्व के कारण गहराई प्राप्त करता है। राम और सीता के संवादों में बार-बार स्मृति, विरह और प्रेम का जो अंतःसंबंध दिखाई देता है, वह नाटक की सौंदर्यात्मक शक्ति का मूल स्रोत है। उदाहरणतः राम का स्मरण और सीता का प्रत्युत्तर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जहाँ अतीत और वर्तमान एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। यह समय-भंग (temporal collapse) दर्शक को एक गहन भावानुभव की ओर ले जाता है। यहाँ संचारी भावों, जैसे दैन्य, विषाद, निराशा, उत्कंठा की सक्रियता करुण रस को पूर्णता प्रदान करती है।

अभिनवगुप्त ने रस को 'आनंद' के रूप में परिभाषित किया है, जो साधारणीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। *"श्रीराम"* नाटक में यह प्रक्रिया अत्यंत प्रभावी ढंग से घटित होती है। दर्शक राम और सीता के दुःख को व्यक्तिगत न मानकर एक सार्वभौमिक अनुभव के रूप में ग्रहण करता है। यही कारण है कि दुःखद घटनाएँ भी एक प्रकार के सौंदर्यात्मक आनंद का स्रोत बन जाती हैं। यह आनंद किसी सुखद स्थिति से नहीं, बल्कि भावों के परिष्कृत अनुभव से उत्पन्न होता है।

नाटक के उत्तरार्ध में जब सभी भाव अपनी चरम अवस्था पर पहुँचते हैं, तब एक प्रकार की वैराग्यपूर्ण शांति उत्पन्न होती है। यह शांत रस की स्थिति है, जो सभी पूर्ववर्ती रसों का परिपाक है। यहाँ करुण और श्रृंगारदोनों ही एक उच्चतर स्तर पर पहुँचकर शांत में विलीन हो जाते हैं। यह प्रक्रिया नाटक को एक पूर्णता प्रदान करती है, जहाँ भावों की यात्रा दुःख से आरंभ होकर शांति में समाप्त होती है।

इस नाटक की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल भावात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक विमर्श भी प्रस्तुत करता है। लोकापवाद का प्रसंग यह दर्शाता है कि समाज की धारणाएँ किस प्रकार व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती हैं। राम का निर्णय इस संदर्भ में एक जटिल नैतिक प्रश्न उठाता है, क्या आदर्श शासक को अपने निजी जीवन का त्याग करना चाहिए? यह प्रश्न नाटक को आधुनिक संदर्भ में भी प्रासंगिक बनाता है। नागेन्द्र के अनुसार रस-सिद्धांत की शक्ति इसी में है कि वह बदलते समय में भी साहित्य की व्याख्या करने में सक्षम है (नागेन्द्र 54)। इसी प्रकार रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को मानवीय संवेदना का दर्पण माना है (शुक्ल 112), और इस दृष्टि से *"श्रीराम"* नाटक आधुनिक पाठक के लिए भी उतना ही अर्थपूर्ण है।

यदि नाटक की संपूर्ण संरचना को देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इसमें रसों का अत्यंत संतुलित संयोजन है। करुण रस अंगी है, जबकि शृंगार, वीर और शांत रस अंग के रूप में कार्य करते हैं। यह संयोजन नाटक को बहुस्तरीय बनाता है और दर्शक को एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभव प्रदान करता है। विशेषतः संवादों में जो भाव-सघनता है, वह नाटक की आत्मा है। इन संवादों के माध्यम से ही रस की निष्पत्ति होती है और दर्शक उस अनुभव का भागी बनता है।

राम के चरित्र की जटिलता को और गहराई से समझने के लिए नाटक के संवादों का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक है। एक स्थल पर राम की स्मृति-प्रधान चेतना केवल अतीत का पुनर्स्मरण नहीं करती, बल्कि वर्तमान की नैतिक विडम्बना को भी उद्घाटित करती है। जब वे कहते हैं—"मेरा मन उन्हीं दिनों की ओर दौड़ जाता है…" (पृ. 14), तो यह

केवल व्यक्तिगत भावुकता नहीं, बल्कि एक ऐसे मन का उद्घाटन है जो अपने ही निर्णय के परिणामों से आंतरिक रूप से विचलित है। यहाँ 'दौड़ जाता है' क्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह अनैच्छिकता को सूचित करती है; अर्थात् स्मृति पर राम का नियंत्रण नहीं है। इस प्रकार स्मृति स्वयं एक उद्दीपन विभाव बन जाती है, जो स्थायीभाव 'शोक' को पुनः सक्रिय करती रहती है। इस निरंतर पुनरावृत्ति से करुण रस की तीव्रता स्थिर न रहकर गतिशील बनती है।सीता के संवादों में यह गतिशीलता एक भिन्न स्तर पर प्रकट होती है। जब वे कहती हैं—"आपका सान्निध्य ही मुझे प्रिय है..." (पृ. 13) , तो यह कथन प्रत्यक्षतः प्रेम की अभिव्यक्ति है, परंतु इसका अंतर्निहित अर्थ अनुपस्थिति की वेदना है। यहाँ भाषा एक प्रकार का 'व्यंजना' (ध्वनि) उत्पन्न करती है, जहाँ कहा गया से अधिक अनकहा अर्थपूर्ण हो जाता है। आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त की ध्वनि-परंपरा के अनुसार यही व्यंजना रस-निष्पत्ति का प्रमुख साधन है। इस प्रकार यह संवाद श्रृंगाररस का होते हुए भी करुण की भूमि पर स्थित है, जिससे एक संयुक्त भावानुभूति उत्पन्न होती है।

नाटक के सामाजिक संदर्भ को समझे बिना इस भावानुभूति की पूर्ण व्याख्या संभव नहीं। *कथासार (पृ. 3)* में उल्लिखित है कि "प्रजा के मन में उठे संदेह" के कारण राम को यह निर्णय लेना पड़ा। यहाँ 'प्रजा का संदेह' केवल एक कथात्मक उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना का प्रतिनिधि है। यह वही बिंदु है जहाँ नाटक निजी और सार्वजनिक के द्वंद्व को उजागर करता है। भरतमुनि के सिद्धांत में यद्यपि सामाजिक संरचना का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, परंतु विभावों की प्रकृति में यह निहित है कि वे सांस्कृतिक संदर्भ से निर्मित होते हैं। इस दृष्टि से लोकापवाद एक सशक्त उद्दीपन विभाव है, जो केवल घटना नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक दबाव का प्रतीक है।

राम का निर्णय—सीता का परित्याग—यहीं पर एक जटिल रसात्मक स्थिति उत्पन्न करता है। यदि इसे केवल करुण की दृष्टि से देखा जाए तो यह अन्यायपूर्ण प्रतीत हो सकता है, किंतु वीर रस की दृष्टि से यह त्याग और कर्तव्य का उदाहरण है। इस प्रकार यहाँ दो स्थायीभाव, शोक और उत्साह, एक ही क्रिया में अंतर्निहित हैं। यह द्वंद्व ही नाटक की गहराई का स्रोत है। राम का चरित्र इस कारण एकरेखीय नहीं रह जाता, बल्कि बहुआयामी बन जाता है, जहाँ प्रत्येक निर्णय अनेक भावों को एक साथ सक्रिय करता है।

सीता के चरित्र में करुण रस की पराकाष्ठा देखने को मिलती है, परंतु यह करुणा निष्क्रिय नहीं है। उसमें एक प्रकार की गरिमा और आत्मस्वीकृति भी है। उनके संवादों में बार-बार जो संयम दिखाई देता है, वह करुण रस को विलापमूलक होने से बचाता है और उसे एक उच्चतर स्तर पर ले जाता है। यह वही स्थिति है जिसे अभिनवगुप्त 'उदात्तीकरण' के रूप में देखते हैं, जहाँ व्यक्तिगत दुःख एक सौंदर्यात्मक अनुभव में रूपांतरित हो जाता है।

नाटक के संवादों की एक विशेषता यह है कि वे प्रत्यक्ष कथन के साथ-साथ आंतरिक मौन को भी व्यक्त करते हैं। कई स्थानों पर जो नहीं कहा गया, वही अधिक प्रभावशाली बन जाता है। यह मौन स्वयं एक अनुभाव है, जो दर्शक को सक्रिय व्याख्या की ओर प्रेरित करता है। उदाहरणतः राम और सीता के बीच की दूरी केवल शब्दों में नहीं, बल्कि उनके बीच उपस्थित मौन में भी व्यक्त होती है। यह मौन करुण रस की तीव्रता को और बढ़ाता है।

रस-सिद्धांत के व्यापक संदर्भ में देखा जाए तो *"श्रीराम"* नाटक एक ऐसी संरचना प्रस्तुत करता है, जहाँ विभिन्न रस एक क्रमिक विकास के माध्यम से प्रकट होते हैं। प्रारंभ में स्मृति और प्रेम के माध्यम से श्रृंगार की उपस्थिति होती है, जो शीघ्र ही विरह में परिवर्तित होकर करुण रस का रूप ले लेती है। इसके साथ ही राम के निर्णयों में वीर रस की झलक मिलती है, और अंततः सभी भाव शांत रस में परिणत होते हैं।

यह क्रमिकता नाटक को एक भाव-यात्रा का रूप देती है, जहाँ दर्शक भी पात्रों के साथ इस यात्रा में सहभागी बनता है। अभिनवगुप्त और भरतमुनि के बीच रस की व्याख्या में जो अंतर है, वह इस नाटक के विश्लेषण में विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। भरतमुनि जहाँ रस को संरचनात्मक तत्वों के समन्वय से उत्पन्न मानते हैं, वहीं अभिनवगुप्त उसे एक आंतरिक अनुभूति के रूप में देखते हैं। *"श्रीराम"* नाटक में यह दोनों दृष्टियाँ एक साथ सक्रिय दिखाई देती हैं। एक ओर विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का स्पष्ट संयोजन है, तो दूसरी ओर साधारणीकरण के माध्यम से उत्पन्न आनंदानुभूति भी है। इस प्रकार यह नाटक भारतीय काव्यशास्त्र की दोनों प्रमुख परंपराओं का समन्वय प्रस्तुत करता है।

आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टियों के आलोक में यह नाटक और भी अधिक अर्थपूर्ण हो उठता है। लोकापवाद का प्रसंग आज के सामाजिक मीडिया युग में भी प्रासंगिक है, जहाँ सार्वजनिक धारणा व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से राम का निर्णय एक कालातीत नैतिक प्रश्न बन जाता है। नागेन्द्र का यह कथन कि रस-सिद्धांत आधुनिक साहित्य की व्याख्या में भी सक्षम है (नागेन्द्र 54), इस नाटक के संदर्भ में पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है।

यदि संपूर्ण नाटक को एक इकाई के रूप में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इसकी संरचना एक वृत्ताकार (circular) संरचना है, जहाँ प्रारंभिक स्मृति अंततः शांति में रूपांतरित हो जाती है। यह वृत्ताकारता भारतीय दार्शनिक परंपरा के उस विचार से जुड़ी है, जहाँ जीवन को एक चक्र के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार नाटक केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि दार्शनिक स्तर पर भी अर्थपूर्ण हो उठता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अंततः यह कहा जा सकता है कि आचार्य चतुरसेन का *"श्रीराम"* नाटक भरतमुनि के रस-सिद्धांत का एक सशक्त उदाहरण है। इसमें करुण रस की प्रधानता के साथ शृंगार, वीर और शांत रसों का संतुलित और प्रभावी समन्वय है। यह नाटक न केवल रामकथा का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि भारतीय नाट्य परंपरा में रस केवल सौंदर्य का उपकरण नहीं, बल्कि जीवन की गहनतम अनुभूतियों का माध्यम है। इस दृष्टि से यह कृति न केवल साहित्यिक, बल्कि दार्शनिक और सांस्कृतिक महत्व की भी है। आचार्य चतुरसेन का *"श्रीराम"* नाटक भरतमुनि के रस-सिद्धांत का एक जीवंत उदाहरण है, जिसमें करुण रस की प्रधानता के साथ शृंगार, वीर और शांत रसों का बहुआयामी समन्वय है। यह नाटक दर्शाता है कि साहित्य का उद्देश्य केवल कथा कहना नहीं, बल्कि जीवन की जटिलताओं को इस प्रकार प्रस्तुत करना है कि वे दर्शक के भीतर एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभव उत्पन्न करें। इस दृष्टि से यह कृति भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसका अध्ययन न केवल साहित्यिक, बल्कि दार्शनिक और सांस्कृतिक विमर्श के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

******

संदर्भ सूची:

1. नागेन्द्र. *भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका*. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1993।
2. नागेन्द्र. *रस सिद्धांत*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2001।
3. शुक्ल, रामचन्द्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. प्रयाग: लोकभारती प्रकाशन, 2012।
4. पांडेय, हजारीप्रसाद. *भारतीय साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005।
5. वर्मा, रामकुमार. *हिन्दी नाटक का विकास*. इलाहाबाद: साहित्य भवन, 1998।
6. मिश्र, केशवप्रसाद. *रस सिद्धांत और हिन्दी नाटक*. वाराणसी: चौखम्बा, 2002।
7. त्रिपाठी, राममूर्ति. *भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत*. दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010।
8. तिवारी, रामचन्द्र. *आलोचना के सिद्धांत*. इलाहाबाद: लोकभारती, 2008।
9. सिंह, नामवर. *कविता के नये प्रतिमान*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2000।
10. सिंह, नामवर. *छायावाद*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2003।
11. गुप्त, गणपति चन्द्र. *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र*. दिल्ली: राजकमल, 1995।
12. शर्मा, रामविलास. *भारतीय साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल, 1999।